

भारतीदासन विश्वविद्यालय व अन्य

बनाम

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद

24 सितम्बर 2001

न्यायमूर्ति एस. राजेन्द्र बाबू एवं न्यायमूर्ति दोरईस्वामी राजू

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद अधिनियम, 1987

धारा 2 (i), 2 (h), 10 (1) (k) - तकनीकी संस्थान- जिसका अर्थ है- किसी तकनीकी शिक्षा अथवा नये विभाग में पाठ्यक्रम या कार्यक्रम शुरू करने से पहले अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद द्वारा कोई अनुमोदन नहीं - एआईसीटीई ने अपीलकर्ता विश्वविद्यालय को प्रोद्योगिकी में कोई भी नया पाठ्यक्रम चलाने से रोकने के लिये रिट याचिका दायर की - उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका स्वीकार करते हुए प्रवेश रद्द करने का आदेश दिया - डिवीजन बैंच (खण्डपीठ) ने इसकी पुष्टि की - अपील में अभिनिर्धारित जब विधायिका के आशय को अधिनियम के परंतुक में विशेष उल्लेख और अभिव्यक्ति मिली; वहां उसे अधिनियम के आधारभूत उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए तुच्छ होना प्रतिपादित नहीं किया जा सकता है। धारा 10 (के) के अंतर्गत अनुमोदन नये तकनीकी

संस्थान/नये पाठ्यक्रम को आरम्भ करने के लिये विश्वविद्यालय को शामिल नहीं करता है।

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (नये तकनीकी संस्थानों को शुरू करने के लिये अनुमति देना, पाठ्यक्रमों या कार्यक्रमों की शुरुआत और पाठ्यक्रमों या कार्यक्रमों के लिये सीटों की प्रवेश क्षमता की अनुमति) विनियम 1954 विनियमन धारा 04 और धारा 12 विनियमन की व्याप्ति - अभिनिर्धारित - जो विश्वविद्यालय को पाठ्यक्रम/नया विभाग शुरू करने से पहले अनुमोदन लेने के लिये विवश करता है जो धारा 10(i)(के) के प्रावधानों के सीधे विपरीत और असंगत है- इसलिये शून्य और अप्रवर्तनीय।

अपीलकर्ता विश्वविद्यालय, जो कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त एक पूर्ण विकसित विश्वविद्यालय है, ने अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद की अनुमति लिये बिना प्रौद्योगिकी में पाठ्यक्रम शुरू किया। एआईसीटीई ने विश्वविद्यालय के अधिकारियों को पाठ्यक्रम चलाने/संचालित करने से रोकने के लिये एक रिट याचिका दायर की, क्योंकि पाठ्यक्रम शुरू करने से पहले विश्वविद्यालय द्वारा पूर्वानुमति नहीं मांगी गई थी, जैसा कि एआईसीटीई अधिनियम और उसके तहत बनाए गए वैधानिक विनियमों, विशेष रूप से विनियमन 4 के तहत परिकल्पित है।

अपीलकर्ता विश्वविद्यालय का रुख यह था कि अधिनियम की धारा 2 (एच) के तहत यह एक तकनीकी संस्थान नहीं था और परिणामस्वरूप तकनीकी शिक्षा का पाठ्यक्रम शुरू करने से पहले एआईसीटीई की अनुमति लेने के लिए बनाए गए नियम एआईसीटीई की विनियमन बनाने की शक्ति से अधिक थे और परिणामस्वरूप शून्य और अप्रवर्तनीय थे।

उच्च न्यायालय की एकलपीठ ने विश्वविद्यालय द्वारा किये गये दाखिले को रद्द कर दिया। अपील पर उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने इसकी पुष्टि की। इसलिए इस न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत हुई।

अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय की ओर से यह तर्क दिया गया कि यह अधिनियम की धारा 24 के तहत तकनीकी संस्थान की परिभाषा में नहीं आता है। यह धारा 10(1)(के) के दायरे से बाहर था। परिणामस्वरूप विभाग/नए पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए एआईसीटीई की पूर्व अनुमति लेने के लिए बाध्य नहीं है, इस प्रकार बनाए गए नियमों को इसके खिलाफ बाध्यकारी या प्रवर्तनीय नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि अधिनियम के प्रावधानों से असंगत कोई नियम या विनियम नहीं बनाया जा सकता था या वैध तरीके से प्रवर्तनीय नहीं बनाया जा सकता था।

प्रत्यर्थी की ओर से यह तर्क दिया गया कि एआईसीटीई का विश्वविद्यालयों पर भी व्यापक नियंत्रण है और इसलिए अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय को भी एआईसीटीई की पूर्व अनुमति लेनी आवश्यक थी।

न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित किया

1.1 जब विधायी मंशा को अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद अधिनियम के प्रावधानों में ही विशिष्ट उल्लेख और अभिव्यक्ति मिली है, तो अधिनियम के अंतर्निहित तथाकथित उद्देश्य को अनुचित महत्व देकर इसे कम या सीमित नहीं किया जा सकता है और न ही इसे निष्प्रभावी बनाया जा सकता है। हस्तगत मामले में, एआईसीटीई अधिनियम में अन्य वैधानिक निकायों के अधिकार या स्वायत्तता को कम करने और नष्ट करने के आशय की कोई साक्ष्य नहीं है, जिनकी अपनी निर्धारित भूमिकाएं हैं। केवल कुछ कल्पित वस्तुओं या अक्षमताओं से सक्रिय होकर, न्यायालय विधायिका के मनोबल को नहीं बढ़ा सकती। अधिनियम में शब्दों को निश्चित अर्थ देने के विधायी आशय को नजरअंदाज करना और ऐसी व्याख्या को अपनाना कठिन है जो अभिव्यक्त भाषा के साथ साथ अधिनियम के अंतर्निहित स्पष्ट अर्थ तथा पेटेंट लक्ष्य व उद्देश्य पर हिंसा की प्रवृत्ति रखेगी। [260-ए-बी-सी]

1.2 एआईसीटीई अधिनियम के उद्देश्य और कारणों के विवरण में, यह विशेष रूप से कहा गया है कि एआईसीटीई को एक सरकारी प्रस्ताव द्वारा राष्ट्रीय विशेषज्ञ निकाय के रूप में स्थापित किया गया था ताकि अनुमोदित मानकों के अनुसार तकनीकी शिक्षा के समन्वित विकास को सुनिश्चित करने के लिए औरमानक के बढ़ते क्षरण को रोकने के लिए केंद्र

और राज्य सरकारों को सलाह दी जा सके। अधिनियम बनाकर अपनी भूमिका अधिक प्रभावी ढंग से निभाने के लिए एआईसीटीई को वैधानिक अधिकार प्रदान किया गया। [260-डी; एफ]

2.1 विश्वविद्यालय के मुकाबले एआईसीटीई की भूमिका केवल सलाहकार, अनुशासनात्मक और मार्गदर्शक कारक है और इस तरह से उचित मानकों और गुणात्मक मानदंडों को बनाए रखता है और उचित कार्रवाई के लिए यूजीसी को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के अलावा स्वयं किसी भी अनुमति को जारी करने / लागू करने की शक्ति प्राधिकार नहीं रखता है। [264-डी-ई]

2.2 एआईसीटीई अधिनियम की धारा 23 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए कोई भी विनियमन नहीं बना सकता है, जब ऐसी शक्ति को उसमें दी गई विशिष्ट सीमा द्वारा सदस्यता दी जाती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं हैं। जहां तक अनुमति देने का प्रश्न है, धारा 10(1)(के) में विशेष रूप से एआईसीटीई की ऐसी शक्ति की सीमा का उल्लेख है जिसका प्रयोग केवल तकनीकी संस्थानों के लिए किया जा सकता है, जैसा कि अधिनियम में परिभाषित किया गया है और आम तौर पर नहीं। इसके अलावा धारा 10(1)(के) किसी विश्वविद्यालय को नहीं बल्कि केवल एक तकनीकी संस्थान को शामिल करता है। इसके अलावा, विनियमन जहां तक

विश्वविद्यालय को तकनीकी शिक्षा में कोई भी नया विभाग या पाठ्यक्रम या कार्यक्रम शुरू करने से पहले पूर्वानुमति लेने और प्राप्त करने के लिए बाध्य करता है (विनियम 4) और विनियमन 12 के उल्लंघन के किसी मामले में ऐसी अनुमति वापस लेने के लिए खुद को सशक्त बनाता है और यह अधिनियम की धारा 10(1)(के) के प्रावधान के सीधे विरोध और असंगत हैं। परिणामस्वरूप, ऐसे नियम शून्य और अप्रवर्तनीय हैं। [265-सी-एफ]

एम. संबाशिव राव उर्फ संबैया और अन्य बनाम उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, इसके रजिस्ट्रार और अन्य द्वारा प्रतिनिधित्व, (1997) 1 आंध्र लॉ टाइम्स 629, अस्वीकृत।

सिविल अपीलिय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 2056/1999

मद्रास उच्च न्यायालय के डब्ल्यू.ए. संख्या 1308/1998 में के निर्णय और आदेश दिनांक 21.10.98 से।

अपीलकर्तागण की ओर से शांति भूषण, ए.वी. रंगम, संजय कुमार पाठक, ए. रंगानाथन तथा उनके साथी।

प्रत्यर्थागण की ओर से डॉ. जे.पी. वर्गीस, बी.के. चौधरी और ई.सी. विद्यासागर।

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति राजू जे. के द्वारा पारित किया गया।

इस अपील में विचार के लिए विधि का एकमात्र और महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या भारतीदासन विश्वविद्यालय अधिनियम, 1981 [इसके बाद विश्वविद्यालय अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट] के अंतर्गत बनाए गए अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय का संचालन क्षेत्र तमिलनाडु राज्य के तिरुचिरापल्ली, तंजावुर और पुदुक्कोट्टई जिलों पर है, जिसको तकनीकी शिक्षा में पाठ्यक्रम या कार्यक्रम प्रदान करने के लिए एक विभाग या सहायक के रूप में एक तकनीकी संस्थान शुरू करने के विश्वविद्यालय को अपनी पसंद और चयन के तकनीकी पाठ्यक्रम संचालित करने हेतु लिए अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद [इसके बाद एआईसीटीई के रूप में निर्दिष्ट] की पूर्व अनुमति लेनी चाहिए।

भारतीदासन विश्वविद्यालय अधिनियम, 1981 ने अन्य बातों के अलावा, उक्त अधिनियम के द्वारा निर्धारित सीखने की ऐसी शाखाओं में निर्देश और प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए; अनुसंधान और ज्ञान की उन्नति और प्रसार के लिए प्रावधान करने के हेतु; डिग्री, उपाधियाँ, डिप्लोमा और अन्य शैक्षणिक विशिष्टताएँ स्थापित करने के लिये; परीक्षा आयोजित करना और उन व्यक्तियों को डिग्री, उपाधियाँ, डिप्लोमा और अन्य शैक्षणिक विशिष्टताएँ प्रदान करने के लिये विश्वविद्यालय का निर्माण किया, जिन्होंने किसी विश्वविद्यालय कॉलेज या प्रयोगशाला या किसी संबद्ध अथवा अनुमोदित कॉलेज में अध्ययन का अनुमोदित पाठ्यक्रम अपनाया है और

विश्वविद्यालय की निर्धारित परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हैं; विहित शर्तों के अंतर्गत मानद उपाधियाँ या अन्य शैक्षणिक विशिष्टताएँ प्रदान करना; और अनुसंधान संस्थानों, विश्वविद्यालय कॉलेजों और प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों, संग्रहालयों और विश्वविद्यालय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक अन्य संस्थानों को स्थापित करना, बनाए रखना और प्रबंधित करना आदि। दूसरे शब्दों में, यह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त एक पूर्ण विकसित विश्वविद्यालय है।

जब अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय ने सूचना प्रौद्योगिकी और प्रबंधन, जैव-इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी, पेट्रोकेमिकल इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी, फार्मास्युटिकल इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी आदि जैसे प्रौद्योगिकी में पाठ्यक्रम शुरू किए, तो एआईसीटीई ने विश्वविद्यालय प्राधिकारियों को उन तकनीकी पाठ्यक्रमों में कोई भी पाठ्यक्रम और कार्यक्रम चलाने/संचालित करने से रोकने के लिए परमादेश रिट की मांग करते हुए मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष 1998 में एक रिट याचिका संख्या 14558 दायर की। शिकायत और साथ ही सामने रखी गई आपत्ति का सारांश यह था कि विश्वविद्यालय ने अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद अधिनियम, 1987 (इसके बाद 'एआईसीटीई अधिनियम' के रूप में निर्दिष्ट) के तथा एआईसीटीई द्वारा बनाए गए वैधानिक विनियमों, विशेष रूप से विनियमन संख्या 4, जो एक विश्वविद्यालय को भी ऐसी पूर्व अनुमति प्राप्त करने के



लिए बाध्य करता है, के अंतर्गत परिकल्पना के अनुसार विश्वविद्यालय द्वारा उन पाठ्यक्रमों के लिए आवेदन नहीं किया था और उनके लिए पूर्व अनुमोदन सुरक्षित नहीं किया था। अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय का रुख, जैसा कि अब हमारे समक्ष है, यह था कि अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय एआईसीटीई अधिनियम की धारा 2 (एच) के तहत परिभाषित तकनीकी संस्थान की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आएगा और परिणामस्वरूप, पूर्वानुमति के लिए बनाए गए नियम तकनीकी शिक्षा या इस उद्देश्य के लिए एक नए विभाग में पाठ्यक्रम या कार्यक्रम शुरू करने के लिए विश्वविद्यालयों द्वारा एआईसीटीई की पूर्व अनुमति, एआईसीटीई की विनियमन बनाने की शक्तियों से अधिक थी और परिणामस्वरूप, शून्य और अशक्त है और इसे लागू नहीं किया जा सकता है। अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय इस हद तक कि विश्वविद्यालयों को भी एआईसीटीई से ऐसी पूर्व अनुमति लेने और सुरक्षित करने के लिए बाध्य करता है।

विद्वान एकल न्यायाधीश ने आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के एम. संबाशिव राव उर्फ संबैया और अन्य बनाम उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, इसके रजिस्ट्रार और अन्य द्वारा प्रतिनिधित्व, (1997) 1 आंध्र लॉ टाइम्स 629 मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के आनुपातिक निर्णय को लागू करते हुए एआईसीटीई के रुख को चुना गया व स्वीकार किया और इसके परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय द्वारा किये गये प्रवेशों

को रद्द करने का आदेश दिया गया। मामले को खण्डपीठ के समक्ष उठाया गया तो खण्डपीठ के विद्वान न्यायाधीश भी आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित अनुपात के प्रति सहमत हुए और अपील को खारिज कर दिया, जिससे अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय को इस न्यायालय में आने की आवश्यकता हुई। चूंकि विद्वान एकल न्यायाधीश और खण्डपीठ द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के समान है, जिसे मद्रास उच्च न्यायालय ने भी पालन करने के लिए कहा है इसलिये उक्त निर्णय का संदर्भ लेना और उक्त निर्णय की शुद्धता या अन्यथा अनुपात पर भी विचार करना उचित और आवश्यक होगा।

एम. संबाशिव राव (सुप्रा) मामले में, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956, आंध्र प्रदेश राज्य उच्च शिक्षा परिषद अधिनियम, एपी विश्वविद्यालय अधिनियम, 1991, एआईसीटीई अधिनियम और अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद अधिनियम के तकनीकी शिक्षा (नए तकनीकी संस्थानों को शुरू करने, पाठ्यक्रमों या कार्यक्रमों की शुरुआत और पाठ्यक्रमों या कार्यक्रमों के लिए सीटों की प्रवेश क्षमता की अनुमति के लिए अनुमोदन प्रदान करना) विनियम, 1994 [इसके बाद 'विनियमों के रूप में निर्दिष्ट] प्रासंगिक प्रावधानों का विज्ञापन करते हुए उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि एआईसीटीई अधिनियम शिक्षा की एक विशेष

श्रेणी पर एक विशेष कानून होने के नाते, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम पर भी अधिशोषित करता है, जो उच्च न्यायालय की राय में, विश्वविद्यालयों द्वारा सामान्यतः शिक्षा प्रदान करने के संबंध में एक सामान्य कानून की प्रकृति में था। इसके अंतर्गत आने वाले समान मामलों के संबंध में सामान्यतः दोनों अधिनियम संसद द्वारा अपनी विधायी सक्षमता के अंतर्गत बनाए जाने के बावजूद बाद में बने कानून के कारण, एआईसीटीई अधिनियम को बाध्यकारी माना गया था। जहां तक एआईसीटीई अधिनियम और उससे संबंधित राज्य अधिनियम के सापेक्ष संचालन का सवाल है, यह माना गया कि एआईसीटीई अधिनियम ने इस क्षेत्र पर कब्जा कर लिया है और इसलिए, राज्य अधिनियम को झुकना होगा और परिणामस्वरूप बनाए गए वैधानिक नियम न केवल वैध हैं अपितु एक अधीनस्थ विधान के रूप में विधि का बल रखते हैं लेकिन उचित योजना के लिए एआईसीटीई अधिनियम के निर्माण के संबंध में मामले के तथ्यों पर विनियमों और एआईसीटीई अधिनियम के बीच प्रतिकूलता या पूरे देश में तकनीकी शिक्षा प्रणाली का समन्वित विकास सम्बंधित नियमों को बनाने में शक्ति के किसी भी कथित अतिरिक्त प्रयोग का कोई प्रश्न नहीं उठता। आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का विचार था कि पूरे देश में तकनीकी शिक्षा से संबंधित अधिकारियों और संस्थानों में से कोई भी या हर कोई एआईसीटीई अधिनियम की धारा 2 (एच) में परिभाषित "तकनीकी संस्थान" के अर्थ में आएगा और इसलिए एआईसीटीई अधिनियम और उसके तहत बनाए गए

विनियमों के तहत एआईसीटीई के प्राधिकार से बंधे होंगे। ऐसे निष्कर्षों पर आने के लिए, पूर्ण पीठ ने उन्नी कृष्णन जेपी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [1993(1) एससीसी 645] और तमिलनाडु राज्य बनाम अधियामन शैक्षिक और अनुसंधान संस्थान और अन्य। [1995(4) एससीसी 104]। में दिए गए इस न्यायालय के निर्णयों से समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया।

अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री शांति भूषण ने आग्रह किया कि धारा 2(i) के तहत परिभाषित अपीलकर्ता जैसा विश्वविद्यालय एआईसीटीई अधिनियम की धारा 2 (एच) में निहित तकनीकी संस्थान की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आएगा और, इसलिए, समान रूप से उक्त अधिनियम की धारा 10 (1) (के) के क्षेत्र से बाहर है एवं परिणामस्वरूप विभाग शुरू करने या नए पाठ्यक्रम या कार्यक्रम शुरू करने के लिए एआईसीटीई की पूर्व अनुमति लेने और प्राप्त करने के लिए बाध्य नहीं है। यहां तक यह विश्वविद्यालयों को भी ऐसी पूर्व अनुमति प्राप्त करने के लिए बाध्य करता है, इसी कारण से एआईसीटीई द्वारा विनियम बनाए गए हैं, अपीलकर्ता के खिलाफ केवल इस तथ्य के आधार पर बाध्यकारी या लागू करने योग्य नहीं माना जा सकता है कि विनियमन विशेष रूप से ऐसा कहता है, इस अधिनियम में निहित प्रावधानों के बावजूद भी इसके विपरीत प्रावधान करने वाला अधिनियम और इस प्रकार बनाया गया कोई भी विनियमन शून्य और अप्रवर्तनीय

होगा। यह भी आग्रह किया गया कि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ का निर्णय कानून की सही स्थिति निर्धारण नहीं करता है और उक्त निर्णय में इस न्यायालय के जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, अंततः वे वास्तव में निर्धारित सिद्धांतों को कोई समर्थन नहीं करते हैं। उसमें, इसलिए, मद्रास उच्च न्यायालय को मुद्दों पर स्वतंत्र रूप से विचार करना चाहिए था और एम. संबाशिव राव (सुप्रा) मामले में पूर्ण पीठ के अनुपात का पालन नहीं करना चाहिए था। अपीलकर्ता की ओर से व्यक्त की गई दृष्ट व्यथा यह है कि आंध्र प्रदेश और मद्रास उच्च न्यायालय दोनों अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों को ठीक से समझने, व्याख्या के सही सिद्धांतों को लागू करने और इसमें शामिल विभिन्न शर्तों पर उचित विचार और महत्व देने में विफल रहे हैं। धारा 10 में विहित विभिन्न शर्त जो विशेष रूप से संदर्भित हैं, के अनुसार विश्वविद्यालयों को भी एआईसीटीई अधिनियम, नियमों और विनियमों के प्रावधानों का पालन करना होगा। यह भी आग्रह किया गया कि अधिनियम के प्रावधानों से असंगत कोई भी नियम या विनियम या तो अधिनियम के तहत नहीं बनाया जा सकता था या वैध तरीके से लागू करने की मांग नहीं की जा सकती थी। इसके सिंह और अन्य बनाम वीवी गिरी और अन्य (एआईआर 1970 एससी 2097) डीके त्रिवेदी एंड संस और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य (एआईआर 1986 एससी 1323) में रिपोर्ट किए गए निर्णयों पर भी मजबूत भरोसा किया गया। इसी प्रकार उन्नी कृष्णन, जेपी और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश

राज्य और अन्य [(1993) 1 एससीसी 645] और टीएन राज्य में तथा अन्य बनाम अधियामन एजुकेशनल एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट और अन्य [(1995) 4 एससीसी 104] और मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य [(1998) 6 एससीसी 131] में रिपोर्ट किए गए निर्णयों पर भी मजबूत भरोसा किया गया।

एआईसीटीई के विद्वान अधिवक्ता डॉ. जेपी वर्गीस ने चुनौती दिये निर्णय में अंकित तर्क के साथ-साथ आंध्र प्रदेश मामले का अवलम्ब लेते हुए आग्रह किया कि पूरे देश में तकनीकी शिक्षा प्रणाली का समन्वित विकास, ऐसी शिक्षा और विनियमन का गुणात्मक सुधार और तकनीकी शिक्षा प्रणाली में मानदंडों और मानकों के उचित रखरखाव की योजना सुनिश्चित करने के लिए अधिनियम के अंतर्गत परिषद के समग्र कार्यों और शक्तियों को ध्यान में रखा जाए एवं अधिनियम की धारा 10 विशेष रूप से धारा 10 (1)(के) सपठित धारा धारा 20 (1) (बी) एटीई अधिनियम के तहत परिकल्पित व उससे जुड़े मामलों के संबंध में एआईसीटीई का विश्वविद्यालयों पर भी व्यापक नियंत्रण होगा और परिणामस्वरूप, किसी भी अन्य तकनीकी संस्थान या तकनीकी शिक्षा में कोई नया पाठ्यक्रम या कार्यक्रम शुरू करने से पहले विश्वविद्यालयों को भी एआईसीटीई की पूर्व अनुमति लेनी होगी। उद्देश्य और योजना की समग्रता नया विभाग जिसे अधिनियम में अंतर्निहित होने का दावा किया गया है, तकनीकी शिक्षा से

संबंधित सभी कार्यात्मक गतिविधियों पर ऐसी व्यापक शक्तियां प्रदान करने के लिए कहा जाता है और विश्वविद्यालय अधिनियम और एआईसीटीई द्वारा बनाए गए नियमों के तहत दिए गए ऐसे दायित्व से छूट का दावा नहीं कर सकते हैं। प्रतिवादी के लिए समर्थन का आधार आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय के अतिरिक्त टीएन राज्य और अन्य बनाम अधियामन एजुकेशनल एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट और अन्य (सुप्रा) और जया गोकुल एजुकेशनल ट्रस्ट बनाम आयुक्त और सचिव, सरकारी उच्च शिक्षा विभाग, तिरुवनंतपुरम, केरल राज्य [(2000) 5 एससीसी 231] में रिपोर्ट किया गया निर्णय प्रतीत होता है।

हमने दोनों पक्षों की दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया। जब अधिनियम के प्रावधानों में ही विधायी मंशा का विशिष्ट उल्लेख और अभिव्यक्ति पाई जाती है, तो अधिनियम के अंतर्निहित तथाकथित उद्देश्य या किसी निकाय के निर्माण के उद्देश्य को अनुचित महत्त्व देकर उसे धीरे धीरे कम करके उसमें कटौती नहीं की जा सकती और उसे निष्प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है। अधिनियम के प्रावधानों के कार्यान्वयन की निगरानी करना, विशेष रूप से तब जब एआईसीटीई अधिनियम में अन्य वैधानिक निकायों के अधिकार या स्वायत्तता को कम करने और नष्ट करने के इरादे का कोई सबूत नहीं है, जिनकी अपनी निर्धारित भूमिकाएँ हैं। केवल कुछ कल्पित वस्तुओं या वांछनीयताओं से सक्रिय होकर, न्यायालय विधायिका

के मनोबल को नहीं बढ़ा सकते। अधिनियम में प्रयुक्त शब्दों को निश्चित अर्थ देने और ऐसी व्याख्या अपनाने के विधायी इरादे को नजरअंदाज करना कठिन है जो व्यक्त भाषा के साथ-साथ स्पष्ट अर्थ और पेटेंट उद्देश्य और वस्तु के विभिन्न अन्य प्रावधानों के तहत हिंसा करेगा। विधायिका द्वारा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कानून के उद्देश्य और भावना को बनाए रखने के प्रयास में भी, न्यायालयों को इस्तेमाल किए गए शब्दों के मार्गदर्शन का अनुसरण करना चाहिए, न कि कानून में अंतर्निहित वैचारिक संरचना और योजना की कुछ पूर्व-कल्पित धारणाओं का। एआईसीटीई अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के विवरण में, यह विशेष रूप से कहा गया है कि एआईसीटीई, मूल रूप से तकनीकी शिक्षा के समन्वित विकास को सुनिश्चित करने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों को सलाह देने के लिए एक राष्ट्रीय विशेषज्ञ निकाय के रूप में एक सरकारी प्रस्ताव द्वारा स्थापित किया गया था। अनुमोदित मानकों के साथ एक प्रभावी भूमिका निभा रहा था, लेकिन, हालांकि, पिछले कुछ वर्षों में, एआईसीटीई द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों की पूर्ण अवहेलना करते हुए और यहां तक कि गंभीर कमियों को ध्यान होते हुए भी बड़ी संख्या में निजी इंजीनियरिंग कॉलेज और पॉलिटेक्निक सामने आये हैं। उचित शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे और शैक्षिक मानकों को बनाए रखने और मानकों के बढ़ते क्षरण को रोकने के लिए एआईसीटीई अधिनियम को



अधिनियमित करके अपनी भूमिका को और अधिक प्रभावी ढंग से निभाने के लिए एआईसीटीई को वैधानिक अधिकार प्रदान किया जाना था।

धारा 2(एच) अधिनियम के प्रयोजनों के लिए 'तकनीकी संस्थान' को इस प्रकार परिभाषित करती है: -

"तकनीकी संस्थान" का अर्थ एक संस्थान जो विश्वविद्यालय नहीं है, जो तकनीकी शिक्षा के पाठ्यक्रम या कार्यक्रम प्रस्तावित करता है, और जिसके अंतर्गत ऐसे अन्य संस्थान शामिल होंगे जिन्हें केंद्रीय सरकार, परिषद के परामर्श से, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, तकनीकी संस्थान घोषित कर सकती है।

चूंकि इसका आशय एक विश्वविद्यालय के अलावा अन्य है, अधिनियम धारा 2 (i) में परिभाषित करता है कि 'विश्वविद्यालय' का अर्थ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 2 के खंड (एफ) के तहत परिभाषित एक 'विश्वविद्यालय' है और इसमें अधिनियम की धारा 3 के तहत एक ऐसा संस्थान जिसे विश्वविद्यालय माना गया हो, भी शामिल है। अधिनियम की धारा 10 एआईसीटीई की विभिन्न शक्तियों और कार्यों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने की दिशा में कदम उठाने के लिए उसके कर्तव्यों और दायित्वों की भी गणना करती है। धारा 10(1)(के) में संबंधित एजेंसियों के परामर्श से नए तकनीकी संस्थान शुरू करने और नए पाठ्यक्रम या कार्यक्रम शुरू करने के लिए अनुमति देने की परिकल्पना की

गई है। धारा 23, जो परिषद को सशक्त रूप से सहानुभूतिपूर्वक और विशेष रूप से निर्धारित तरीके से केवल ऐसे विनियमों को बनाने का आदेश देती है जो ऐसे अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं हैं। अधिनियम, सभी उद्देश्यों के लिए और संपूर्ण रूप से 'तकनीकी संस्थानों और' विश्वविद्यालयों की विशिष्ट पहचान और अस्तित्व को बनाए रखता है और उक्त विरोधाभास को ध्यान में रखते हुए जहां भी एआईसीटीई द्वारा विश्वविद्यालय या विश्वविद्यालयों या विश्वविद्यालय की गतिविधियों का पर्यवेक्षण या विनियमन और मार्गदर्शन किया जाना है। विश्वविद्यालय के साथ-साथ तकनीकी संस्थान और जहां विश्वविद्यालय को छोड़ दिया गया है एवं शामिल नहीं किया गया है, वह केवल धारा 10, 11 और 22(2)(बी) में तकनीकी संस्थान को विशिष्ट रूप से उल्लेख करते हुए संदर्भित करता है। धारा 10(1)(सी),(जी),(ओ) का उल्लेख करना आवश्यक और उपयोगी होगा, जिससे ज्ञात होगा कि विश्वविद्यालयों का उल्लेख 'तकनीकी संस्थानों और खंड (के),(एम)(पी),(क्यू),(एस) और (यू) के साथ किया गया है। जिसमें विश्वविद्यालयों के संदर्भ का सुस्पष्ट लोप है और केवल तकनीकी संस्थानों का संदर्भ दिया जा रहा है। यह देखना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि जब एआईसीटीई को धारा 10 की उप-धारा (1) के खंड (पी) में बिना किसी आरक्षण के किसी भी तकनीकी संस्थान का निरीक्षण करने का अधिकार जो भी हो, है। जब विश्वविद्यालयों का सवाल आता है, तो वह वित्तीय आवश्यकताओं या उसके शिक्षण, परीक्षा और अनुसंधान के मानकों को

सुनिश्चित करने तक ही सीमित औरपरिरुद्ध है। निरीक्षण केवल किसी विभाग या विभागों का किया जा सकता है या करवाया जा सकता है और वह भी उस रीती से जैसा कि अधिनियम की धारा 11 के अनुभाग में परिकल्पित किया जा सकता है। अधिनियम का धारा 10 की उप-धारा (1) के खंड (टी) में एआईसीटीई की परिकल्पना है कि वह तकनीकी शिक्षा प्रदान करने वाले किसी भी संस्थान को डीम्ड विश्वविद्यालय घोषित करने के लिए यूजीसी को केवल सलाह देगी और स्वयं ऐसा कोई काम नहीं करेगी। इसी तरह, उसी प्रावधान का खंड (यू) जो तकनीकी संस्थानों शिक्षण संस्थानों या कार्यक्रमों का समय-समय पर मूल्यांकन करने के लिए उसके द्वारा निर्दिष्ट दिशानिर्देशों, मानदंडों और मानकों के आधार पर या संस्था या कार्यक्रम की मान्यता या गैर-मान्यता के संबंध में परिषद, या आयोग या अन्य निकायों को सिफारिश करने के लिए एक राष्ट्रीय प्रत्यायन बोर्ड की स्थापना की परिकल्पना करता है। इन सभी अत्यंत महत्वपूर्ण पहलुओं से पता चलता है कि अधिनियम के तहत बनाए गए एआईसीटीई का उद्देश्य विश्वविद्यालयों से श्रेष्ठ या पर्यवेक्षण और नियंत्रण करने वाला प्राधिकरण नहीं है और इस प्रकार ऐसे विश्वविद्यालयों पर केवल इस कारण से खुद को थोपना है कि यह तकनीकी में इसके किसी भी विभाग या इकाई में शिक्षा या कार्यक्रम में शिक्षण प्रदान कर रहा है। एआईसीटीई अधिनियम के प्रावधानों और यूजीसी अधिनियम के प्रावधानों के सावधानीपूर्वक अवलोकन से स्पष्ट होगा कि विश्वविद्यालयों के मुकाबले एआईसीटीई की भूमिका केवल

सलाहकार, अनुशासनात्मक और मार्गदर्शक कारक है और इस तरह से सेवा प्रदान करती है, उचित मानकों और गुणात्मक मानदंडों को बनाए रखने का कारण और उचित कार्रवाई के लिए यूजीसी को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के अलावा, किसी भी प्रतिबंध को जारी करने और लागू करने के लिए सशक्त प्राधिकारी के रूप में नहीं है। विश्वविद्यालयों के संबंध में एआईसीटीई अधिनियम में ऐसे किसी भी प्रावधान को लागू करने में सचेतन और जानबूझकर की गई चूक न केवल एक सकारात्मक संकेतक है, बल्कि विश्वविद्यालयों की तुलना में एआईसीटीई की स्थिति, भूमिका और गतिविधियों का निर्धारण करने में इसके विभागों और इकाइयों की गतिविधियाँ और कार्यप्रणाली निर्धारक कारकों में से एक होना चाहिए। अधिनियम में अंतर्निहित योजना और विभिन्न प्रावधानों की भाषा के इतने स्पष्ट महत्व वाले ये सभी अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू, विद्वान न्यायाधीशों की नज़र से बच गए हैं, अन्यथा उनके उचित और सही परिप्रेक्ष्य में ध्यान और विचार किया जाना चाहिए। एआईसीटीई या इसे गठित करने वाले अधिनियम के कल्पित इरादे और कल्पित आशय के आधार पर एम. संबाशिव राव मामले (सुप्रा) में व्यक्त किया गया अति सक्रिय दृष्टिकोण अनावश्यक है और इससे बचा जाना चाहिए, खासकर जब ऐसी व्याख्या हो न केवल विभिन्न प्रावधानों की भाषा के साथ हिंसा करने के लिए बाध्य है, बल्कि अनिवार्य रूप से यूजीसी और विश्वविद्यालयों जैसे अन्य वैधानिक प्राधिकरणों उन संस्थानों के गठन और उन्हें नियंत्रित करने वाले संबंधित

कानूनों के तहत उन्हें सौंपे गए क्षेत्रों और उनमें कामकाज को अप्रासंगिक या यहां तक कि एआईसीटीई को एक विनाशकारी भूमिका के साथ एक महाशक्ति बनाकर स्थिति, प्राधिकरण और स्वायत्तता को कम करके गैर-इकाई के रूप में प्रस्तुत करता है।

उन्नी कृष्णन मामले (सुप्रा) में, यह न्यायालय उन प्रकृति के मुद्दों से चिंतित नहीं था जिन्हें अब उठाया जाना है और उनके सम्प्रेक्षण के संबंध में शक्तियों, अधिकारों एवं जिनसे संबंधित विवादों के संदर्भ में राज्य विधानमंडल या सरकार हस्तक्षेप, विनियमित या प्रतिबंधित कर सकती थी और पेशेवर कॉलेजों को स्थापित करने और चलाने के अधिकारों को करने को इस मामले में सेवा में लगाए जाने के उनके संदर्भ और उद्देश्य से बाहर नहीं किया जा सकता है। वास्तव में, यहां तक कि इस न्यायालय ने, जिसने कैपिटेशन फीस आदि की बुराइयों को रोकने के लिए एक योजना बनाई थी, विशेष रूप से सरकार और विश्वविद्यालयों द्वारा संचालित कॉलेजों को अपने दायरे से बाहर रखा। समान रूप से, अधियामान इंजीनियरिंग कॉलेज मामले (सुप्रा) में विचारणीय प्रश्न एआईसीटीई अधिनियम के प्रावधान, उसके तहत बनाए गए नियम और विनियम के तहत राज्य सरकार द्वारा एक पेशेवर इंजीनियरिंग कॉलेज के नियंत्रण के सापेक्ष दायरे और सीमा एवं एआईसीटीई द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों के बारे में था। इस मामले में ऐसे निर्णयों जिनकी सत्यता हमारे समक्ष विचाराधीन

है, राज्य के द्वारा अधिनियमित विश्वविद्यालय जो अधिनियम के अलावा राज्य अधिनियम के तहत गठित एक विश्वविद्यालय संसद द्वारा बनाए गए यूजीसी अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित होता है, के अधिकारों के सरोकार के संबंध में उनमें पारित सम्प्रेक्षण पर भरोसा करने से पहले, इस न्यायालय के उपरोक्त वर्णित इस न्यायालय के उपरोक्त वर्णित दो निर्णयों में मुद्दों की प्रकृति एवं चरित्र को विचार में नहीं लिया गया है। एम. संबासिवा राव मामले (सुप्रा) में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय ने यूजीसी की अवस्था, स्थिति के साथ-साथ यूजीसी की महत्ता को अनावश्यक रूप से अधिक सरलीकृत और रेखांकित किया है, जिसमें कहा गया है कि यूजीसी शैक्षणिक संस्थानों को केवल अनुदान एवं वित्तीय सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से चिंतित था तथा उसका कार्य एक विशेषज्ञ निकाय के रूप में संसद द्वारा दी गई अपनी श्रेष्ठ, महत्वपूर्ण और विशिष्ट भूमिका को पूरी तरह से नजरअंदाज करते हुए अनुसंधान और वैज्ञानिक व तकनीकी संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षण और परीक्षा के मानकों, यहां तक कि यूजीसी की अनुपस्थिति में भी यूजीसी के साथ ही एआईसीटीई की संबंधित भूमिका के सापेक्ष दायरे और प्रभाव के उचित और तुलनात्मक विचार के बिना विश्वविद्यालयों में शिक्षण और परीक्षा के मानकों के समन्वय और निर्धारण के संबंध में एक सिफारिशी और नियामक निकाय के रूप में है।

यह अब तक अच्छी तरह से तय हो चुका है कि संसद ने भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-1 की प्रविष्टि 66 में परिकल्पित शक्तियों के कथित प्रयोग में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 और साथ ही एआईसीटीई अधिनियम, 1987 को अधिनियमित किया है, जो "उच्च शिक्षा या अनुसंधान और वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों के लिए संस्थानों में मानकों के समन्वय और निर्धारण" के रूप में व्याख्या करता है। संसद के लिये किसी विशेष वर्ग या श्रेणी के संस्थानों के बीच मानकों के समन्वय और निर्धारण के प्रयोजन व उद्देश्य से एक कानून बनाना स्वीकार्य था, जो विभिन्न प्रकार की शिक्षा और अनुसंधान जैसा कि विभिन्न विषयों के तकनीकी संस्थान तथा ऐसे विषयों की विशेष शाखाओं से निपट सकता था। संसद, एआईसीटीई अधिनियम को अधिनियमित करते समय, यूजीसी अधिनियम, 1956 के प्रावधानों को पूरी ताकत और प्रभाव के साथ अस्तित्व में थी, जो विशेष रूप से संस्थानों के साथ-साथ उच्च अध्ययन के लिये संस्थानों के श्रेणी व वर्ग के संस्थान लेकिन जो माने गये विश्वविद्यालय नहीं हैं, के विश्वविद्यालय स्तर पर मानकों के समन्वय और निर्धारण से संबन्धित थी लेकिन फिर भी तकनीकी संस्थान की परिभाषा के अंतर्गत केवल ऐसे संस्थान को साथ में लिया गया है जो धारा 2 (i) के अंतर्गत विश्वविद्यालय के रूप में परिभाषित नहीं है। तकनीकी संस्थानों को परिभाषित करने के अलावा, यहां तक कि एआईसीटीई को कुछ निश्चित कार्य करने, विशेष देखभाल करने के लिए

सशक्त बनाने में भी विश्वविद्यालय को अलग रखा गया है, ऐसा लगता है कि विश्वविद्यालयों का विशिष्ट उल्लेख करने के लिए विशेष ध्यान दिया गया है, जहां भी और जब भी एआईसीटीई से विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालय विभागों के साथ-साथ इसके घटक संस्थानों के साथ अकेले बातचीत करने की उम्मीद की जाती है। एआईसीटीई अधिनियम के उद्देश्यों के कथन में, जिस बुराई पर अंकुश लगाने की मांग की गई थी, वह यह थी कि दिशा-निर्देशों की पूरी तरह से अवहेलना करते हुए निजी इंजीनियरिंग कॉलेजों और पॉलिटेक्निकों की अंधाधुंध संख्या में वृद्धि हुई, जिसके परिणामस्वरूप कमजोर मानक, अनियोजित विकास, अपर्याप्त सुविधाओं में कमी हुई और उनमें बुनियादी ढांचागत सुविधाओं की कमी है, न कि किसी विश्वविद्यालय निकाय या यूजीसी से उत्पन्न होने वाली किसी विसंगति की, जो एआईसीटीई का गठन करके उन्हें दरकिनार करने या अधीन करने के बारे में सोच भी सके। उक्त उद्देश्य के लिए नियोजित संरक्षित भाषा और एआईसीटीई अधिनियम की धारा 10 (1) (के) में विश्वविद्यालयों को संदर्भित करने के लिए जानबूझकर चूक की गई है, जबकि एआईसीटीई को नए तकनीकी संस्थानों को शुरू करने और नए कार्यक्रमों या पाठ्यक्रमों की शुरुआत के लिए अनुमति देने का अधिकार है अथवा ऐसे संस्थानों को महत्वहीन होने से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। धारा 10,11 और 22 में निहित विभिन्न प्रावधानों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण से यह भी ज्ञात होगा कि विश्वविद्यालयों के मुकाबले एआईसीटीई को दी गई बातचीत



की भूमिका तकनीकी शिक्षा प्रणाली में मानदंडों और मानकों के उचित रखरखाव को सुनिश्चित करने के उद्देश्य तक सीमित है ताकि इसके द्वारा निर्धारित मानकों के अनुरूप हो सके। इस संबंध में एआईसीटीई के किसी भी निर्देश को पूरा करने में किसी भी चूक को उचित कार्रवाई के लिए यूजीसी या अन्य अधिकारियों के ध्यान में लाने के अलावा ऐसे विश्वविद्यालयों पर कोई अतिरिक्त या प्रत्यक्ष नियंत्रण या किसी सीधी कार्रवाई की गुंजाइश नहीं है। यह कहते हुए कि विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता का मतलब सत्तावादी कामकाज की अनुमति नहीं होना चाहिए, उच्च न्यायालयों ने उनके द्वारा किये गये गठन से एआईसीटीई को इस हद तक इस तरह की सत्तावाद की अनुमति दे दी है और वस्तुतः एआईसीटीई के अधीन कर दी गई कि देश की शैक्षिक व्यवस्था में विश्वविद्यालयों को सौंपे गए महत्व और सुरुचिपूर्ण भूमिका को कम कर दिया जाए। हमारे विचार में, यह एआईसीटीई का गठन करने या एआईसीटीई अधिनियम पारित करने का यह उद्देश्य प्रतीत नहीं होता है। एम. संबाशिव राव मामले (सुप्रा) में जो न्यायालय ने अपने निर्णय में अंकित किया है को वर्तमान मामले में न्यायालय की स्वीकृति के पक्ष में पाया गया है, उससे बचना चाहिए था और न तो उसका ऐसा आशय था अथवा सदैव संसद के चिंतन में था औरना ही यूजीसी और विश्वविद्यालयों को एआईसीटीई के अधीनस्थ रखना चाहिये था। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा और अनुसंधान के मापदण्डों को आकार देने के साथ-साथ समन्वित विकास और शिक्षा के सुधार को आगे बढ़ाने में

यूजीसी और विश्वविद्यालयों की हमेशा सर्वोपरि भूमिका रही थी और रही है। जब केवल विश्वविद्यालयों के अलावा अन्य संस्थानों को ही संबद्धता लेनी होती है, तो चुनौती के तहत निर्णयों में यह कहना सही नहीं था कि एक विश्वविद्यालय, जो किसी तकनीकी संस्थान को संबद्धता प्रदान नहीं कर सकता, वह खुद को भी संबद्धता प्रदान नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप, अधिनियमों को उनकी संबंधित सीमाओं या संचालन क्षेत्र के भीतर रखने के लिए 'सामान्य कानून और' विशेष कानून में वर्गीकृत करने के सिद्धांतों के आधार पर दिए गए निष्कर्ष आवश्यक नहीं हैं और हमारी अनुमति या स्वीकृति के योग्य नहीं हैं।

हमारे विचार में, एआईसीटीई, उपधारा (1) के होते हुए भी, अधिनियम की धारा 23 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए ऐसा कोई विनियमन नहीं बना सकती है, जो यद्यपि निस्संदेह अधिनियम के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए ऐसे नियमों को सामान्यतः बनाने में सक्षम बनाती है, जब ऐसी शक्ति को अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं होने के लिए सुनिश्चित करने के लिए उसमें दी गई विशिष्ट सीमा द्वारा परिचालित किया जाता है। जहां तक अनुमति देने का प्रश्न है, पहले या बाद की बात तो छोड़ ही दीजिए, धारा 10(1)(के) विशेष रूप से एआईसीटीई की ऐसी शक्ति की सीमा को सीमित करती है जिसका प्रयोग केवल अधिनियम में परिभाषित तकनीकी संस्थानों के लिए किया जाना है,

सामान्यतः नहीं। जब भाषा विशिष्ट, असंदिग्ध और सकारात्मक होती है, तो उसे एक वैचारिक वस्तु और उद्देश्य को बनाए रखने के उद्देश्यपूर्ण निर्माण के बहाने व्यापक अर्थ देने के लिए नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, जो कि एआईसीटीई अधिनियम के प्रयोजन और कारणों के कथन को ध्यान में रखते हुए भी आवश्यक या उचित नहीं है। इसलिए, जहां तक यह विनियमन, विश्वविद्यालयों को तकनीकी शिक्षा (विनियम 4) में कोई भी नया विभाग या पाठ्यक्रम या कार्यक्रम शुरू नहीं करने के लिए पूर्वानुमति लेने और प्राप्त करने के लिए बाध्य करता है और उल्लंघन के किसी भी मामले में ऐसी अनुमति वापस लेने के लिए खुद को सशक्त बनाता है। विनियम (विनियम 12) सीधे तौर पर अधिनियम की धारा 10(1)(के) के प्रावधानों के विपरीत और असंगत हैं और परिणामस्वरूप शून्य और अप्रवर्तनीय हैं।

यह तथ्य कि विनियम कानून का बल रख सकते हैं या जब विनियम बनाया जाना हो तो उन्हें संबंधित विधायिका के समक्ष रखना पड़ता है, इससे कोई अधिक शुद्धता या प्रतिरक्षा प्रदान नहीं होती है यद्यपि वे स्वयं वैधानिक प्रावधान हैं। परिणामस्वरूप, जब विनियम बनाने की शक्ति कुछ सीमाओं तक ही सीमित होती है और उसका प्रवाह पूर्ण रूप से परिभाषित सीमा के अंदर होता है जो वास्तव में बनाये या दिखाये जाते हैं और पाये जाते हैं कि वे इसकी सीमाओं के भीतर नहीं बल्कि उनके बाहर

बनाये गये हैं, तो अदालतें इसे नजरअंदाज करने के लिए बाध्य हैं। जब उनके प्रवर्तन का प्रश्न उठता है और तथ्य केवल यह है कि उन्हें रद्द करने या अधिकारातीत घोषित करने के लिए कोई विशेष राहत नहीं मांगी गई है, विशेषकर तब जब पीड़ित पक्ष लिस या कार्यवाही का प्रतिवादी है और कोई अतिरिक्त शुद्धता या अधिकार औरवैधता प्रदान नहीं कर सकता है, स्पष्ट रूप से कमी पाई गई है। इसलिए, यह कहना एक मिथक होगा कि अधिनियम की धारा 23 के तहत बनाए गए विनियमों को संवैधानिक और कानूनी दर्जा प्राप्त है, इस तथ्य को ध्यान में रखे बिना कि उनमें से कोई भी या अधिक, अधिनियम के विशिष्ट प्रावधानों के अनुरूप नहीं पाए गये हैं। इस प्रकार, प्रश्नगत विनियम, जिन्हें एआईसीटीई विश्वविद्यालयों/यूजीसी को उसे प्रदत्त शक्तियों के दायरे में बांधने के लिए नहीं बना सकता था, उन्हें किसी विश्वविद्यालय या उसके किसी विभाग और घटक संस्थान में तकनीकी शिक्षा में एक नया विभाग या पाठ्यक्रम और कार्यक्रम शुरू करने की किसी भी आवश्यकता के मामले में किसी विश्वविद्यालय के खिलाफ पूर्व अनुमोदन लेने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है या बाध्य नहीं किया जा सकता है।

यदि इसे संक्षेप में कहें तो, एआईसीटीई अधिनियम की धारा 10 को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि जब भी अधिनियम एक 'विश्वविद्यालय' को कवर करने का लोप करता है, तो उसे अधिनियम के प्रावधानों में

विशेष रूप से उल्लेखित किया गया है। उदाहरण के लिए, जबकि धारा 10 के खंड (के) के तहत केवल 'तकनीकी संस्थानों' का उल्लेख किया गया है, धारा 10 का खंड (ओ) 'तकनीकी संस्थानों और तकनीकी शिक्षा प्रदान करने वाले विश्वविद्यालयों' में छात्रों के प्रवेश के लिए दिशानिर्देश प्रदान करता है। यदि हम अधिनियम की धारा 2(एच) के तहत 'तकनीकी संस्थान' की परिभाषा को देखें, तो यह स्पष्ट है कि 'तकनीकी संस्थान' के अंतर्गत 'विश्वविद्यालय' शामिल नहीं हो सकता है। विधानमंडल का यह स्पष्ट आशय नहीं है कि सभी संस्थानों, चाहे विश्वविद्यालय हो या ना हो, को 'अधिनियम के अंतर्गत आने वाले तकनीकी संस्थान' के रूप में माना जाना चाहिए। यदि यही आशय था, तो विधानमंडल के लिए केवल 'तकनीकी संस्थान' की परिभाषा प्रदान करने में कोई कठिनाई नहीं थी और 'विश्वविद्यालय' को उसकी परिभाषा से बाहर नहीं रखा जाना था और इस प्रकार 'तकनीकी संस्थान और विश्वविद्यालय' दोनों शब्दों का साथ-साथ का उपयोग करने की आवश्यकता से परहेज किया गया था। 'तकनीकी संस्थान' की परिभाषा इसे 'विश्वविद्यालय' के दायरे से बाहर करती है। जब 'तकनीकी संस्थान' की परिभाषा इसे 'विश्वविद्यालय' से बाहर रखा गया है तो यह व्याख्या करने के लिए कि ऐसे खंड या ऐसी अभिव्यक्ति जहां भी 'तकनीकी संस्थान' अभिव्यक्ति होती है, उसमें 'विश्वविद्यालय अधिनियम' में वह शामिल होगा जो उसमें प्रदान नहीं किया गया है। नए तकनीकी संस्थानों को शुरू करने और संबंधित एजेंसियों के परामर्श से नए

पाठ्यक्रमों या कार्यक्रमों को शुरू करने के लिए अनुमति देने की शक्ति धारा 10 (के) के अंतर्गत आती है, जो एक 'विश्वविद्यालय' को कवर नहीं करेगी बल्कि केवल एक 'तकनीकी संस्थान' को कवर करेगी। यदि धारा 10(के) एक 'विश्वविद्यालय' को कवर नहीं करती है, बल्कि केवल एक 'तकनीकी संस्थान' को कवर करती है, तो एक विनियमन को इस तरह से नहीं बनाया जा सकता है कि जब एक 'विश्वविद्यालय' और एक 'तकनीकी संस्थान' के बीच विरोधाभास हो तो 'विश्वविद्यालयों' के लिए आवेदन करने के लिए 'तकनीकी संस्थान' के संबंध में बनाए गए विनियमन को लागू किया जा सके। इस प्रकार, हमें अपना ध्यान मुख्य रूप से उस प्रश्नगत अधिनियम को अधिनियमित करने में अपनाई गयी भाषा पर केंद्रित करना है। इसलिए, इस मामले के दृष्टिकोण में अन्य अधिनियमों की व्याप्ति का परीक्षण करना भी आवश्यक नहीं है अथवा क्या अधिनियम विश्वविद्यालय अधिनियम पर प्रभावी है या उसका प्रभाव सूची-I की प्रविष्टियों 63 से 65 के अंतर्गत आने वाली प्रतिस्पर्धी प्रविष्टियों पर हावी है। देखें संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-III की प्रविष्टि 25।

यह तथ्य कि शुरू में अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय के संघ ने एआईसीटीई से अनुमति लेने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया था और उसके बाद इस मामले को आगे नहीं बढ़ाया या अन्य समान संस्थाएं इसे प्राप्त करने के लिए इस तरह का रास्ता अपना रही थीं और एम. संबासिवा राव मामले

(सुप्रा) में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने मामले पर जो विशेष दृष्टिकोण अपनाया वो ऐसे कारण नहीं हैं जिन्हें अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय के पक्ष में नहीं माना जा सकता है। न ही ऐसे कारण है जो किसी प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने और अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय के दावों को खारिज करके राहत देने से इनकार करने के लिए सुसंगत या उचित कारक हो सकते हैं। हम अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के कथन को भी अभिलेख पर रखते हैं, जो हमारे विचार में, अन्यथा भी कानून की सही स्थिति है, कि अपीलकर्ता की एआईसीटीई के प्रश्नगत विनियमन के संदर्भ में यह चुनौती और एएसआईटीई के इस दावे कि अपीलकर्ता-विश्वविद्यालय को एक विभाग शुरू करने या तकनीकी शिक्षा में एक नया पाठ्यक्रम या कार्यक्रम शुरू करने के लिए एआईसीटीई की पूर्व अनुमति लेनी चाहिए, का अर्थ यह नहीं है कि उनके पास एआईसीटीई द्वारा तकनीकी शिक्षा के समन्वित एवं एकीकृत विकास एवं मानकों के रखरखाव को सुनिश्चित करने के उद्देश्य के लिये निर्धारित मानकों और मानदंडों के अनुरूप होने का कोई दायित्व या कर्तव्य नहीं है।

ऊपर वर्णित सभी कारणों से, हम अपील स्वीकार करते हैं और परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत रिट याचिका को खारिज करके चुनौती दिये गये निर्णय को अपास्त करते हैं। हमारे द्वारा घोषित कानून की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, एम. संबाशिव राव मामले

(सुप्रा) में दिए गए आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय को भी कानून की सही स्थिति निर्धारित करने वाला नहीं माना जा सकता है। कोई लागत नहीं।

अपील स्वीकार की गयी



यह अनुवाद आर्टिफिशल इंटेलिजेन्स टूल सुवास की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी जगमोहन अग्रवाल-॥(आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए , निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा ।